इकाई 19 काव्य वाचन और विश्लेषण : केदारनाथ सिंह

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 केदारनाथ सिंह की चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

19.2.1 केदारनाथ सिंह का कवि परिचय

19.2.2 'पानी में घिरे हुए लोग' कविता का वाचन और विश्लेषण

19.2.3 'बनारस' कविता का वाचन और विश्लेषण

19.2.4 'रचना की आधि रात' का वाचन और विश्लेषण

19.2.5 'फर्क नहीं पड़ता' का वाचन और विश्लेषण

19.3 सारांश

19.4 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

19.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

- केदारनाथ सिंह की प्रमुख कविताओं से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी;
- पाठ्यक्रम में अध्ययन हेतु निर्धारित कविताओं की व्याख्या और विश्लेषण का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी;
- केदारनाथ सिंह की कविता में निहित व्यापक मानवीय चेतना और जीवन मूल्यों की गहनता को उनकी कविता के विश्लेषण के माध्यम से समझ सकेंगे/सकेंगी;
- चयनित कविताओं में निहित भाषिक और काव्यगत सौन्दर्य से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी और
- यह जान सकेंगे/सकेंगी कि किसी कवि की कविता के विश्लेषण हेतु किन प्रमुख पक्षों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

19.1 प्रस्तावना

समकालीन कविता में केदारनाथ सिंह एक महत्वपूर्ण नाम है। अज्ञेय द्वारा संपादित 'तीसरा सप्तक' (1959) से लेकर 'सृष्टि पर पहरा' '2014'तक उनका व्यापक काव्य संसार फैला हुआ है। समकालीन कविता में उन्हें बहुश्रुत और बहुउद्धृत कवि के रूप में स्मरण किया जाता है। उन्होंने अपने समय की कविता के संवेदनात्मक पक्ष को सबल करने के साथ ही कविता के नये मुहावरे भी गढ़े। लोक आस्था, संवदेन और जिजीविषा को उनकी कविता में प्राणतत्व की तरह महसूस किया

जा सकता है। इकाई 12 में आप उनकी कविता के विषय में विस्तार से पढ़ चुके हैं। इस इकाई में आप उनकी चयनित कविताओं के वाचन और विश्लेषण का परिचय प्राप्त करेंगी/करेंगे।

19.2 केदारनाथ सिंह की चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

अब हम केदारनाथ सिंह की चयनित कविताओं का अध्ययन करेंगे।

19.2.1 केदारनाथ सिंह का कवि परिचय

केदारनाथ सिंह (1934–2018) : समकालीन कविता के बहुप्रसिद्ध कवि केदारनाथ सिंह की प्रारंभिक कविताएँ अज्ञेय द्वारा संपादित 'तीसरा सप्तक'(1959) प्रकाशित हुई थीं। कविता, आलोचना और संपादन के क्षेत्र में उनकी सृजनशीलता अत्यधिक प्रशंसित रही है। लेकिन, केदारनाथ सिंह मूलतः और अंततः कवि हैं। 'अभी बिल्कुल अभी' (1960), 'जमीन पक रही है' (1980), 'यहाँ से देखो' (1983),'बाघ' (1986),'अकाल में सारस (1988), 'उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ' (1995), तालस्ताय और साइकिल (2005), 'सृष्टि पर पहरा' (2014) आदि कविता संग्रहों से केदार जी की लगभग साठ वर्षों की काव्य यात्रा को देखा जा सकता है। सबसे बड़ी बात यह है कि आज का कवि केदारनाथ सिंह की कविताओं से लगातार शिक्षा पाता आ रहा है। उनकी कविताओं का फलक गाँव से लेकर महानगर तक व्याप्त है। लोक, आस्था और विश्वास के साथ–साथ समय और समाज की अनुगूँजें इन कविताओं में सुनी जा सकती हैं। यहाँ आस्था से आशय आध्यात्मिकता नहीं है। यह आस्था जीवन के प्रति है। सहज और सामान्य प्रतीत होने वाली इनकी काव्य–पंक्तियों में गहरा अर्थबोध छिपा रहता है। यह कवि की शक्ति और सामर्थ्य का परिचायक है। इसकी कविताओं में विलक्षण संवेदनशीलता विद्यमान है। कवि ने साधारण मनुष्य को कविता के केंद्र में प्रतिष्ठित किया है। इस अर्थ में केदार जी साधारण मनुष्य के कवि कहे जा सकते हैं। इस दौर के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कवियों में केदारनाथ सिंह का नाम अग्रगण्य है। सन1989 में साहित्य अकादेमी ने 'अकाल में सारस' हेतु साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित किया। व्यास सम्मान, मैथिलीशरण गुप्त सम्मान, उत्तर प्रदेश का भारत–भारती सम्मान, आदि के अलावा वर्ष 2013 में उन्हें प्रसिद्ध ज्ञानपीठ पुरस्कार से अलंकृत किया गया है।

19.2.2 'पानी में घिरे हुए लोग' कविता का वाचन और विश्लेषण

पानी में घिरे हुए लोग

प्रार्थना नहीं करते

वे पूरे विश्वास से देखते हैं पानी को

और एक दिन

बिना किसी सूचना के

खच्चर बैल या भैंस की पीठ पर

घर–असबाब लादकर

चल देते हैं कहीं और

यह कितना अद्‌भुत है

कि बाढ़ चाहे जितनी भयानक हो

उन्हें पानी में थोड़ी–सी जगह जरूर मिल जाती है
थोड़ी–सी धूप
थोड़ा–सा आसमान
फिर वे गाड़ देते हैं खम्भे
तान देते हैं बोरे
उलझा देते हैं मूंज की रस्सियां और टाट
पानी में घिरे हुए लोग
अपने साथ ले आते हैं पुआल की गंध
वे ले आते हैं आम की गुठलियां
खाली टिन
भुने हुए चने
वे ले आते हैं चिलम और आग

फिर बह जाते हैं उनके मवेशी
उनकी पूजा की घंटी बह जाती है
बह जाती है महावीर जी की आदमकद मूर्ति
घरों की कच्ची दीवारें
दीवारों पर बने हुए हाथी–घोड़े
फूल–पत्ते
पाट–पटोरे
सब बह जाते हैं
मगर पानी में घिरे हुए लोग
शिकायत नहीं करते
वे हर कीमत पर अपनी चिलम के छेद में
कहीं न कहीं बचा रखते हैं
थोड़ी–सी आग

फिर डूब जाता है सूरज
कहीं से आती हैं

पानी पर तैरती हुई
लोगों के बोलने की तेज आवाजें
कहीं से उठता है धुआं
पेड़ों पर मंडराता हुआ
और पानी में घिरे हुए लोग
हो जाते हैं बेचैन

वे जला देते हैं
एक टुटही लालटेन
टांग देते हैं किसी ऊंचे बांस पर
ताकि उनके होने की खबर
पानी के पार तक पहुंचती रहे

फिर उस मद्धिम रोशनी में
पानी की आंखों में
आंखें डाले हुए
वे रात–भर खड़े रहते हैं
पानी के सामने
पानी की तरफ
पानी के खिलाफ

सिर्फ उनके अंदर
अरार की तरह
हर बार कुछ टूटता है
हर बार पानी में कुछ गिरता है
छपाक.....छपाक.....

'पानी में घिरे हुए लोग' केदारनाथ सिंह की एक प्रतिनिधि कविता है। इस कविता में बाढ़–पीड़ितों के यथार्थ चित्र अंकित किए गए हैं। प्राकृतिक आपदा से जूझते जनजीवन का यथार्थ बिंब कवि की लेखनी से मूर्त हो उठा है। जीवन और मृत्यु से संघर्ष करते बाढ़–पीड़ितों की जिजीविषा भी व्यक्त हुई है। बार–बार टूटने और बह जाने के बावजूद उनमें पुनः पुनः सृजन की अद्‌भुत क्षमता होती

है। हमारी सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था मानो उनकी भावनाओं के साथ सदा से आँख मिचौली खेलती आ रही है। विडंबना यह है कि पीड़ित जनसमुदाय एक मूक दृष्टा की भाँति सूनी निगाहों से सबकुछ देखने के लिए विवश हो रहा है। इस जनसमुदाय की अनुभूतियों, अंतःव्यथाओं व संघर्षों से केदारनाथ सिंह हमें परिचित कराना चाहते हैं। यह कविता मानवीय संवेदना से ओतप्रोत है। कविता का बिंब–विधान उसका मूल वैशिष्ट्य है। केदारनाथ सिंह की कविताओं में लोक परंपरा का सुंदर निर्वाह हुआ है। लोक प्रचलित शब्दावली एवं ठेठ ग्रामीण शब्दों को भी कवि ने बड़ी खूबसूरती से कविता में समाहित किया है।

व्याख्या :

पानी में घिरे हुए लोग ———————— चल देते हैं कहीं और।

केदारनाथ सिंह ने यहाँ बाढ़ के पानी से घिरे जनजीवन की त्रासदी का चित्रण किया है। जीवन और मृत्यु से जूझते लोगों की जिजीविषा भी अभिव्यंजित हुई है।

आम आदमी प्राकृतिक आपदाओं से सदा ही सर्वाधिक पीड़ित रहा है। बाढ़ के पानी से घिरे हुए लोग उससे जूझते हुए भी अपने जीवन–सूत्रों की तलाश कर रहे होते हैं। कवि का कहना है कि जलमग्न की अवस्था में ये लोग किसी उम्मीद में किसी से प्रार्थना करते हुए अपने हाथ कभी ऊपर नहीं उठाते। वे सहायता अथवा उद्धार के लिए न तो किसी देवता का आह्वान करते हैं और न ही समाज के किसी प्रशासनिक ठेकेदार की गुहार करते हैं।उन्हें अपनी शक्ति पर विश्वास है कि वे इस आपदा के प्रकोप से भी जीवन रक्षा का मार्ग अवश्य ढूँढने में सफल होंगे। अतः वे पूरे विश्वास के साथ पानी को देखते हैं। उसकी गहराई को नाप लेते हैं तथा एक दिन बिना किसी सूचना के अपने मवेशियों, खच्चर, बैल, भैंस आदि की पीठ पर तथाकथित अपना पूरा घर लादे किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाते हैं।

यह कितना अद्‌भुत है ———————— चिलम और आग।

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि द्वारा बाढ़–पीड़ित जनसामान्य के जीवन संघर्ष और उनके प्रयास को उजागर किया गया है। बाढ़–पीड़ित लोगों की जीवनी शक्ति से उत्पन्न स्थितियों का अंकन किया गया है। कवि उनकी जीवनी शक्ति से चकित और चमत्कृत है। बाढ़ की भयंकरता में डूबने–उतरने के बावजूद वे इन्हीं स्थितियों में पैर जमाए रखने की थोड़ी–सी जगह ढूँढ भी लेते हैं। उनकी जरूरतें बहुत बड़ी नहीं होती हैं। कम–से–कम सुविधाओं व साधनों के साथ भी वे बेहद खुशनुमा जीवन जी लेते हैं। उन्हें जीवन यापन के लिए भौतिक संसाधनों की आवश्यकता बहुत कम होती है। प्रकृति की खुली गोद में ही उन्हें अधिक सुकून मिलता है। थोड़ी–सी जमीन, थोड़ा आसमान, थोड़ी–सी धूप और थोड़ा–सा पानी के संसार में वे अपने बसेरे का खंभा गाड़ देते हैं। मूँज की रस्सियाँ उलझाकर वे टाट की दीवारें खड़ी कर देते हैं और तने हुए बोरे के दरवाजों में पुनः उनकी जिंदगी सुरक्षित होने लगती है। पुआल के बिस्तर पर आम की गुठलियाँ चूसते हुए वे जीवन रस का आनंद उठाते हैं। भुने हुए चने से ख़ाली दिन को भरते हैं तथा चिलम की आग में भविष्य को बुनने लगते हैं।

कहना न होगा कि यहाँ झुग्गी–झोपड़ियों में साँस लेने वाली जिंदगी की यथार्थ छवि प्रस्तुत हुई है। सबसे भयानक और कठिन स्थितियों पर अपनी संघर्षशीलता के कारण विजय पाने के बाद जीवन के मूलमंत्र को समझना और जीवन रस का आनंद उठाना कविता का सबसे सुंदर पक्ष है।

फिर बह जाते हैं ———————— थोड़ी–सी आग।

कवि बाढ़–पीड़ितों की आस्थावादी दृष्टि पर प्रकाश डालते हुए कहना चाहता है कि आपदाओं से जूझते लोग जितनी बार जीवन रचते हैं बाढ़ का प्रकोप उनकी सारी कोशिशों को बहा ले जाता। वह उनकी झोपड़ियों की कच्ची दीवारों के साथ उनसे जुड़े सारे सपने, तमाम उम्मीदें, कल्पनाएँ, जैविक संसाधन की वस्तुएँ आदि भी ढहा देने का प्रयास करता है। इन लोगों की आस्था भी पूजा की घंटी के बह जाने साथ बहा दी जाती है। साथ ही बह जाता है महावीर की आदमकद मूर्ति में निहित लोगों का विश्वास। दुर्दिन में तारणहार के प्रकट होने का विश्वास भी उनका बचा नहीं रहा। बाढ़ की संहारकारी शक्ति ने उनके घर, माल–सामान, मवेशी, असबाब आदि के साथ–साथ समस्त आस्था, विश्वास, उम्मीदें, सपने आदि का भी सर्वनाश करदिया। बावजूद इसके पानी में घिरे हुए लोग कभी किसी से कोई शिकायत नहीं करते, उलाहना नहीं देते न तो प्रकृति से और न ही सामाजिक–राजनीतिक ठेकेदारों से उनका कोई ओरहन है। उन्हें अपनी क्षमता, सामर्थ्य पर पूरा विश्वास रहता है कि हर हालात में, प्रतिकूल परिस्थितियों में, विवश और लाचार स्थितियों में भी अपने हृदय के किसी कोने में थोड़ी सी आग के रूप में थोड़ी सी उम्मीद बचाए रखते हैं। यह उम्मीद की भावना उनकी जिजीविषा को उद्दीप्त करती है। यह कविता का वैशिष्ट्य है और सौंदर्य भी ।

फिर डूब जाता है ———————— पहुँचती रहे।

बाढ़–पीड़ित अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए तमाम प्रयासों के पश्चात दिन ढलते प्रशासनिक तौर पर राहत कार्य अभियान चलाए जाते हैं। आकाश में हेलिकॉप्टरों के चक्कर लगाते रहते हैं। पीड़ितों के लिए खाद्य सामग्री, जरूरत के सामान आकाश मार्ग से गिराने का कार्यक्रम निश्चित किया जाता है। यह काम पूरा करने वालों के आगमन की सूचना हवा और पानी के साथ पीड़ितों तक मिल जाती है। आकाश में हेलिकॉप्टर का धुआँ पेड़ों पर मंडराते हुए देखकर लोगों में उत्सुकताभरी हलचल होने लगती है। उनकी भूखी निगाहें राहत सामग्री पाने के लिए बेचैन हो उठती है। वे अपनी जरूरतों को उन तक पहुँचाने के लिए किसी टूटी–फूटी लालटेन को जलाकर किसी बांस की ऊँचाई पर टांग देते हैं जिससे वहाँ उनके होने की खबर राहत पहुँचाने वालों तक प्रेषित हो जाए।

फिर उस मद्धिम रोशनी में ———————— छपाक.....छपाक.....

कविता के इस अंतिम अंश में केदारनाथ सिंह बाढ़–पीड़ितों की मनोदशा से परिचित कराते हैं। वे कहते हैं कि उनकी आँखों, मस्तिष्क और हृदय में परस्पर विरोधी विचार उमड़–घुमड़ रहे हैं। लेकिन प्रत्यक्षतः वे टूटी लालटेन की मद्धिम रोशनी में जमे हुए पानी की निस्तब्ध आँखों में आँखें डालकर पूरी रात खड़े इंतजार कर रहे होते हैं। उनकी आँखों में प्रतीक्षा है कि कब ऊपर से कुछ खाद्य सामग्री गिरे और उनके लपकते हाथ उन्हें थाम लें। इसी प्रतीक्षा में उनकी एकटक निगाहें पानी को विविध कोणों से देखती हुई निरीक्षण करती हैं। अपने हालातों के कारणों का विश्लेषण करते हुए कभी–कभी उनके हृदय में पानी के ख़िलाफ विद्रोह सुलगने लगता है। परंतु उनकी विवशता उसे भीतर–भीतर मथती रहती है और हर बार की तरह उनके भीतर के विद्रोही भाव का तीर टूटकर बिखर जाता है। इसी के साथ उनकी उत्सुकता, उम्मीदें, बेचैनी, प्रतीक्षा सबकुछ पुनः टूटने की कगार पर आ जाते हैं। ऐसी हालत में राहत कर्मियों के द्वारा पानी में कुछ गिराया जाता है छपाक छपाक। इस ध्वनि के साथ पीड़ित जन समुदाय की अंतर्व्यथा और भी घनी हो जाती है। तात्पर्य यह है कि जिन राहत सामग्री की उम्मीद में रात भर पानी में खड़े रहे, इंतजार करते रहे अंततः बाढ़ का पानी उसे भी अपने साथ बहाकर ले जाता है। बस बच जाता है तो केवल एक ध्वनि छपाक..... छपाक की।

केदार जी के जन साधारण के प्रति प्रतिबद्धता के संबंध में नन्दकिशोर नवल लिखते हैं – ''निस्संदिग्ध है कि 'यहाँ से देखो' की कविताओं के केन्द्र में साधारण मनुष्य है। केदार जी साधारण तल पर रहने वाले इसी साधारण मनुष्य के कवि हैं, अज्ञेय की तरह उस ऊँचाई के नहीं जहाँ कोई रहता नहीं है। यह ऊँचाई तो अपनी निर्जनता से उन्हें दहला देती है : मेरे शहर के लोगो/यह कितना भयानक है/ कि शहर की सारी सीढ़िया मिलकर/जिस महान ऊँचाई तक जाती हैं/वहाँ कोई नहीं रहता!'' (समकालीन काव्य यात्रा, पृ.151)

19.2.3 'बनारस' कविता का वाचन और विश्लेषण

इस शहर में वसंत
अचानक आता है
और जब आता है तो मैंने देखा है
लहरतारा या मडुवाडीह की तरफ़ से
उठता है धूल का एक बवंडर
और इस महान पुराने शहर की जीभ
किरकिराने लगती है

जो है वह सुगबुगाता है
जो नहीं है वह फेंकने लगता है पचखियाँ
आदमी दशाश्वगमेध पर जाता है
और पाता है घाट का आखिरी पत्थर
कुछ और मुलायम हो गया है
सीढ़ियों पर बैठे बंदरों की आँखों में
एक अजीब सी नमी है
और एक अजीब सी चमक से भर उठा है
भिखारियों के कटरों का निचाट खालीपन

तुमने कभी देखा है
खाली कटोरों में वसंत का उतरना!
यह शहर इसी तरह खुलता है
इसी तरह भरता

और खाली होता है यह शहर
इसी तरह रोज़ रोज़ एक अनंत शव
ले जाते हैं कंधे
अँधेरी गली से
चमकती हुई गंगा की तरफ़

इस शहर में धूल
धीरे–धीरे उड़ती है
धीरे–धीरे चलते हैं लोग
धीरे–धीरे बजते हैं घंटे
शाम धीरे–धीरे होती है

यह धीरे–धीरे होना
धीरे–धीरे होने की सामूहिक लय
दृढ़ता से बाँधे है समूचे शहर को
इस तरह कि कुछ भी गिरता नहीं है
कि हिलता नहीं है कुछ भी
कि जो चीज जहाँ थी
वहीं पर रखी है
कि गंगा वहीं है
कि वहीं पर बँधी है नाँव
कि वहीं पर रखी है तुलसीदास की खड़ाऊँ
सैकड़ों बरस से
कभी सई–साँझ
बिना किसी सूचना के
घुस जाओ इस शहर में
कभी आरती के आलोक में
इसे अचानक देखो
अद्‌भुत है इसकी बनावट

यह आधा जल में है
आधा मंत्र में
आधा फूल में है

आधा शव में
आधा नींद में है
आधा शंख में
अगर ध्यान से देखो
तो यह आधा है
और आधा नहीं भी है

जो है वह खड़ा है
बिना किसी स्थंभ के
जो नहीं है उसे थामें है
राख और रोशनी के ऊँचे ऊँचे स्थंभ
आग के स्थंभ
और पानी के स्थंभ
धुएँ के
खुशबू के
आदमी के उठे हुए हाथों के स्थंभ

किसी अलक्षित सूर्य को
देता हुआ अर्घ्य
शताब्दियों से इसी तरह
गंगा के जल में
अपनी एक टाँग पर खड़ा है यह शहर
अपनी दूसरी टाँग से
बिलकुल बेखबर!

व्याख्या

इस शहर में बसंत ———————— कटोरों का निचाट ख़ालीपन।

'बनारस' कविता केदारनाथ सिंह के काव्यसंग्रह 'यहाँ से देखो' में संकलित है। इस कविता में प्राचीनतम शहर बनारस के सांस्कृतिक वैभव के साथ ठेठ बनारसीपन को भी आलोकित किया गया है। बनारस पर महाकवि तुलसीदास ने भी लिखा है, मिर्जा गालिब ने भी, भारतेंदु, प्रेमचंद आदि ने भी, लेकिन केदारनाथ सिंह का बनारस अपने आप में भिन्न है। इस कविता में बनारस जीवंत हुआ है अपने सामर्थ्य और सीमा के साथ बनारस के वैभव और सम्मोहन को भी इस कविता में अंकित किया गया है। इस कविता में पाठक मिथकीय परंपरा से जुड़े बनारस और यथार्थ के धरातल पर खड़े बनारस का साक्षात्कार कर सकते हैं। बनारस के सामाजिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को भी कविता में रूपायित किया गया है।

आस्था, विश्वास, भक्ति और आश्चर्य का समन्वित रूप है केदारनाथ सिंह की 'बनारस'। इस शहर में बसंत अचानक आता है जब बड़ी तादाद में श्रद्धालु अपने श्रद्धार्घ्य अर्पित करने आ जाते हैं। उनके पदचाप से उड़ने वाली धूल से बवंडर सा उठता है और महान पुराने शहर की जीभ किरकिराने लगती है। अचानक लहरतारा और मडुवाडीह गंगाघाट के किनारे स्थित मोहल्ले की ओर कवि का ध्यान केंद्रित होता है।

लहरतारा का संबंध कबीर से है और इस कविता में केदारनाथ सिंह ने कबीर की परंपरा को आधार बनाया है। लहरतारा कबीर का प्रतीक है तो कबीर क्रांतिकारी परिवर्तनशील कविताई चेतना का। बनारस शहर का बसंत यानी श्रद्धा, भक्ति, मोक्ष, आस्था और रूढ़िवादिता का संकेतक है। कबीर की चेतना ही उस रूढ़िवादिता, धर्म के अवैज्ञानिक प्रयोग रूपी जीभ की किरकिरी को समाप्त कर सकती है।

बसंत का आगमन जिस प्रकार जड़–चेतन, दृश्य–अदृश्य सभी को जीवंतता का संचार करता है, उसी प्रकार श्रद्धालुओं की भीड़ बनारस के वातावरण, मनुष्य और मानवेतर प्राणियों में नई चेतना और उल्लास का भाव संचार करती है। अर्थात् उनकी आशाएँ, उम्मीदें और आकांक्षाएँ उमड़ने लगती हैं। श्रद्धालु दशाश्वमेध घाट पहुँचते हैं तो वहाँ चहल–पहल बढ़ जाती है। उनके खाने के सामान की ओर देखते हुए बंदरों की आँखों में एक अजीब सी नमी उतर आती है। कई दिनों से नितांत ख़ाली पड़े भिखारियों के कटोरे में उल्लसित कर देनेवाली खनक सुनाई पड़ती है। कहना न होगा कि कवि की व्यापक संवेदना यहाँ मूर्त हो उठी है।

तुमने कभी देखा है ———————— गंगा की तरफ

बनारस कविता के माध्यम से पुरातन शहर के रहस्य भी उद्घाटित होते हैं। बनारस महज एक शहर नहीं है। यह एक मिथक है। उल्लेख किया जा चुका है कि बनारस में श्रद्धालुओं अथवा पर्यटकों की संख्या बढ़ती है तो इसका वातावरण वसंती हो जाता है। अर्थात उमंग, उल्लास और ताजगी से भर उठता है। तीर्थयात्रियों, दर्शनार्थियों और श्रद्धालुओं की संख्या बढ़ती है तो शहर भरा–पूरा हो उठता है। शवों को मोक्ष प्रदान करने वाली गंगा में प्रवाहित करते ही शहर ख़ाली भी हो जाता है।

वसंत ऋतु में प्रकृति सुहानी हो उठती है। जनजीवन में उत्साह भर उठता है। कवि का आग्रह है कि 'ख़ाली कटोरों में बसंत का उतरना' में जो सौंदर्य लुक्कायित है, उसे भी महसूस किया जाए। कितना सुंदर बिंब है 'ख़ाली कटोरों में बसंत का उतरना'। जो उपेक्षित और अवहेलित भिक्षुकों के ख़ाली कटोरों में चंद चिल्लर या खाद्य के कुछ टुकड़े गिरते हैं तो कवि ने बसंत का उतरना कहा है। कटोरे के भरने और ख़ाली होने की तरह शहर भी भरता और ख़ाली होता है। धार्मिक भावनाएँ, क्रियाकलाप, विचार आदि भी आते–जाते हैं। अभावों, असुविधाओं, मुसीबतों से भारी जिंदगी को

स्पष्ट करने के उद्देश्य से कवि ने 'अंधेरी गली' का प्रतीक प्रयुक्त किया है। अंधेरी गली में रहने वाले लोग मृतप्रायः हैं। वे दुनिया को हमेशा के लिए अलविदा कहने वालों को अपने कंधे पर लादे 'चमकती हुई गंगा' की ओर ले जाते हैं। कैसी विडंबना है कि आजीवन अभाव–असुविधाओं को साथी बनाने वालों को मृत्यु होने पर गंगा घाट पर मोक्ष की अपेक्षा में शव–दाह किया जाता है।

बनारस की सबसे बड़ी खूबी यह है कि यह हर स्थिति में उल्लास और आनंद से भरा रहता है। उसका भरना और उसका ख़ाली होना, ख़ाली कटोरों में बसंत का आना, अंधेरी गली और चमकती हुई गंगा केवल विरोधाभासी नहीं हैं, बल्कि ये प्रयोग पाठक को उल्लसित करते हैं और उसके हृदय को गहरे रूप से द्रवित करते हैं।

इस शहर में धूल ————————— सैकड़ों बरस से।

केदारनाथ सिंह की कविता 'बनारस' में बनारस शहर को एक जीवंत पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस शहर को आप काव्य नायक भी कह सकते हैं। बनारस से कवि का दीर्घ संबंध रहा है। इसलिए कवि का जीवनानुभव इस कविता में बार–बार झांकता हुआ नजर आता है। ध्यातव्य है कि कवि ने बनारस को समग्रता और संपूर्णता के साथ अपनी कविता में उकेरा है।

इस कवितांश में 'धीरे– धीरे' शब्द–युग्म का बार–बार प्रयोग हुआ है। इससे कवि एक तरह की निरंतरता की ओर संकेत करना चाहता है। यह शब्द–युग्म बनारस शहर और उसके जनजीवन की विशेषता प्रकट करता है। लोगों का चलना, धूल का उड़ना , घंटे का बजना, शाम का आना आदि सबकुछ धीमे–धीमे होता है। प्रत्येक क्रिया में धीमापन तो है लेकिन ठहराव या स्थिरता नहीं है। इस धीमेपन में भी एक गति है, लय है और छंद भी। दुनिया बड़ी तेजी से बदल रही है लेकिन बनारस दुनिया की गति में भागने की होड़ में नहीं है। लोगों की आस्था, विश्वास, रूढ़ियाँ और मान्यताएँ भी बड़ी तेजी से नहीं बदल रहे हैं। लोग जरूर बदल रहे हैं लेकिन उसी अनुपात में बनारस नहीं। उसमें एक सामूहिक लय है। इस सामूहिक लय में पूरा शहर भौतिकता के नाम पर पूरी तरह नहीं बदल गया है। अगर बदला भी है तो धीरे–धीरे। इसकी हर चीज अपने स्थान पर इत्मिनान के साथ है। बदलाव, परिवर्तन या विप्लव के लिए इस शहर की कोई बड़ी बेचैनी नहीं दिखाई पड़ती है।गंगा नदी भी वहीं है। लोगों की आस्था और विश्वास पूर्ववत कायम हैं।गंगा के तट पर बंधी नौकाएँ भी अपनी जगह पर हैं। महाकवि तुलसीदास की खड़ाऊँ भी सैकड़ों बरस से ज्यों का त्यों रखी हुई है। नयापन के प्रति बहुत अधिक व्याकुलता बनारस की नहीं है। नयापन आ भी रहा है तो अपनी धीर–मंथर गति से ही। यह इस शहर की प्रमुख विशेषता है।

कभी सई –साँझ बिना ————————— आधा नहीं भी है।

इन पंक्तियों में कवि ने बनारस की विलक्षण विशेषताओं और अपरूप सौंदर्य का चित्रण किया है। संसार में कहीं भी किसी भी रूप में संपूर्णता की अवधारणा नहीं है। बनारस शहर को भी संपूर्णता में जान पाना बहुत आसान नहीं है। कहीं न कहीं कुछ छूट ही जाता है। यह हर जगह अपनी उपस्थिति आधे–अधूरे ही दर्ज करता है। यहाँ आस्तिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार के लोग हैं। जो आस्तिक है वह केवल बौद्धिक और केवल आध्यात्मिक नहीं। इसलिए वह आधा है। यदि आप बनारस शहर को पूरी तरह जानने–समझने का उत्साह रखते हैं तो किसी दिन शाम को इसके अंदर प्रवेश कीजिए। संध्या आरती के आलोक में आप पाएँगे कि यह शहर आधा जल, आधा मंत्र में, आधा फूल में, आधा शव में, आधा नींद में और आधा शंख में है। आशय यह कि इस शहर की संपूर्णता बँटी हुई है, विभाजित है। आप पाएँगे कि कहीं शंख ध्वनि तो कहीं धार्मिक क्रिया–कलाप संपन्न हो रहे हैं। कहीं से शव–यात्राएँ निकलकर इसी घाट पर दाह संस्कार के लिए चले आ रहे हैं तो कहीं लोग सबसे बेख़बर हो आराम से सो रहे हैं। समूचा अस्तित्व कई अस्तित्वों में विभाजित हुआ है। 'आधा है और आधा नहीं भी है' को समझने के लिए आप कविता के पूर्वार्ध का संदर्भ स्मरण कीजिए जहां कवि ने कबीर की चेतना का बनारस में अभाव पाया था। परंपराओं

के प्रति श्रद्धा आधे बनारस के रूप में देखा जा सकता है तो रूढ़ियों के खंडन और अस्वीकार न होना बनारस के अधूरेपन का संकेतार्थ माना जा सकता है।

जो है वह खड़ा है ———————— बिल्कुल बेख़बर।

उपर्युक्त पद्यांश में कवि केदारनाथ सिंह ने बनारस के प्रति लोगों की आस्था और विश्वास, आध्यात्मिकता और अलौकिकता आदि को प्रदर्शित किया है। आस्था केवल आस्था होती है। उसे किसी सहारे की जरूरत नहीं होती है। लेकिन वह अडिग होती है। लोगों के मन में बनारस के प्रति, स्वर्ग और मोक्ष के प्रति, प्रबल आस्था बनी हुई है। सदियों से अटूट विश्वास क़ायम है। बनारस के घाटों, वहाँ जलते हुए शवों से निकलती हुई अग्निशिखा, आरती के दीपों की रौशनी से प्रतिबिंबित गंगा आदि का काव्यिक चित्रण भी किया गया है। कवि ने कहा है कि जो यहाँ नहीं है उसे भी कुछ स्तंभों ने बांध रखा है। अर्थात् जो नहीं है, चिता के रूप में जल रहा है वहाँ धार्मिक क्रिया–कलाप हो रहे हैं। एक अदृश्य आस्था और विश्वास को थामे हुए हैं यहाँ के लोग आरती के धुएँ से उठने वाली खुशबू में, शवों को लेकर आने वाले लोगों के ऊपर उठे हुए हाथों में अथवा रामनाम सत्य है कि जयकारों में उसे ढूँढा जा सकता है। कबीर जिस मिथ को तोड़ने के लिए काशी छोड़ मगहर चले गए थे और उन्होंने वहाँ प्राण त्यागे थे, आज काशी में दृश्यमान नहीं है। आज भी लोग अपनी वृद्धावस्था में बनारस जाकर प्राण त्यागने पर स्वर्गलाभ का विश्वास रखते हैं। उनके विश्वास में रंच मात्र का भी बदलाव नहीं आया है। इसी भाव को कवि ने काव्यिक अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए लिखा है 'अलक्षित सूर्य को अर्घ्य देते हुए'। यह शहर अपने दूसरे पैर से बेख़बर होकर केवल एक पैर पर खड़ा है, उसे अपने दूसरे पैर होने का आभास तक नहीं है। यह दूसरा पैर परिवर्तनशीलता और प्रगतिशील विचार का है जिसका मार्ग कबीरदास ने ढूँढ निकाला था। उस धारा का प्रवाह पुनर्स्थापित करने का आग्रह कवि का है। कवि केदारनाथ सिंह बनारस मैं आध्यात्मिकता और प्रगतिशीलता के समन्वित रूप के दर्शन के अभिलाषी हैं।

19.2.4 'रचना की आधी रात' कविता का वाचन और विश्लेषण

अंधकार ! अंधकार ! अंधकार !

आती है

कानों में

फिर भी कुछ आवाजें

दूर बहुत दूर

केही

आहत सन्नाटे में

रह–रहकर

ईंटों पर

ईंटों के रखने की

फलों के पकने की

खबरों के छपने की

सोए शहतूतों पर
रेशम के कीड़ों के
जगने की
बुनने की ———

और मुझे लगता है
जुड़ा हुआ इन सारी
नींदहीन ध्वनियों से
खोए इतिहासों के
अनगिनत ध्रुवांत पर
मैं भी रचता रहा हूँ
झुका हुआ घंटों से
इस कोरे कागज की भट्ठी पर
लगातार
अंधकार ! अंधकार ! अंधकार !

केदारनाथ सिंह की 'रचना की आधी रात' शीर्षक कविता 1960 में प्रकाशित हुई थी। इस कविता को समझने के लिए बीसवीं शताब्दी के छठे दशक के भारतीय संदर्भ को समझना आवश्यक है। राजनीति की दृष्टि से यह नेहरू काल था। स्वतंत्रता के पहले देखे और दिखाए गए सपनों का टूटना और मोहभंग का काल था। नेहरू नए भारत के निर्माण का स्वप्न देख रहे थे तो कुछ उनके साथ थे और कुछ असंतुष्ट भी। डॉ सदानंद साही ने 'केदारनाथ सिंह : चकिया से दिल्ली'में 'एक छोटी–सी स्मृति' शीर्षक लेख में 'रचना की आधी रात' में पुलिस विभाग के डी जी सौमित्र शंकर बनर्जी का उल्लेख किया है जिन्होंने छात्रावस्था में ही इस कविता को पढ़ा ही नहीं था बल्कि इतने वर्षों बाद भी उन्हें कविता पूरी याद थी। उन्होंने केदार जी उपस्थिति में न केवल पूरी कविता संगोष्ठी में सुनाई बल्कि अपने ढंग से उसके निहितार्थों पर भी प्रकाश डाला – 'पुलिस का काम भी रात के आहत सन्नाटे में उठने वाली आवाजों को सुनना है ——— और समाज के दुखों को दूर करना है आदि, आदि।' (पृष्ठ–38) कहने का आशय यह है कि केदारनाथ सिंह की कविताएं विभिन्न वर्गों तक व्याप्त थीं, वे केवल साहित्य के विद्यार्थी और अध्यापकों तक सीमित न थीं।

यह कविता कवि की रचना प्रक्रिया और उसकी कवि दृष्टि को भी समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। उल्लेख करना अनावश्यक है कि कवि की अनेक कविताओं में बहुआयामिता है। 'रचना की आधी रात' भी एक ऐसी बहु आयामी कविता है।

व्याख्या :

अंधकार ! अंधकार ! ————————— बुनने की ———

उपर्युक्त पंक्तियाँ ज्ञानपीठ पुरस्कृत कवि केदारनाथ सिंह की 'रचना की आधी रात' कविता से अवतरित हैं। यहाँ कवि ने अपनी रचना प्रक्रिया को स्पष्ट किया है तथा यह बताया है कि उनकी कविता बाहर आती कैसे है।

रचना एक प्रकार से जीवन है। अंधेरे से उजाले की ओर जीवन की यात्रा होती है। पुनः जिस प्रकार माँ के गर्भ से शिशु का जन्म होता है उसी प्रकार रचना कवि के गहरे अंतस्तल में भावों का आंदोलन और उद्वेलन होने के पश्चात ही मूर्त रूप धारण करती है। महत्वपूर्ण और महान अथवा कालजयी रचनाएँ इस ढंग से संसार के समक्ष प्रस्तुत होती हैं। वे अपने समय के गहन अंधकार से ही जन्म लेती हैं। 'अंधकार' की तीन बार आवृत्ति उसकी सघनता का सूचक है जिसमें कुछ देखने, समझने और परखने के लिए कोई अवसर नहीं मिलता है। कविता आगे बढ़ती है तो कवि कहता है कि बावजूद उस सघन अंधेरे के बीच में से कुछ आवाजें आती हैं। दूर कहीं बहुत दूर किसी 'आहत सन्नाटे' से आनेवाली आवाजों को कवि सुन पा रहा है। सन्नाटा के लिए आहत विशेषण इसलिए है कि ध्वनियाँ उस सन्नाटे को बाधित कर रही हैं। सन्नाटे को चीरते हुए बहुत दूर से कहीं ईंटों पर ईंटों के रखने की, फलों के पकने की, खबरों के छपने की, सोए हुए शहतूतों पर कीड़ों के जगने और रेशम बुनने की आवाज भी सुनाई पड़ रही है। ध्यान दीजिए कि किसी दूरी से भट्ठे में ईंटों पर ईंटें रखी जाने की आवाज तो सुनाई पड़ सकती है, लेकिन फलों के पकने और रेशम बुनने की आवाज सामान्यतः कानों में सुनाई नहीं पड़ती है। फल का पकना और रेशम बुनना देखा जाता है, सुना नहीं जाता, लेकिन कवि को ये आवाजें भी सुनाई पड़ रही हैं। दरअसल कवि ने यहाँ बिंबों के माध्यम से कुछ दृश्य उपस्थित किया है। ये दृश्य बिंब कवि के सृजन कर्म का प्राणतत्व है। पुनः इन आवाजों में निर्माण है। जीवन की अर्थवत्ता है और उसकी पृष्ठभूमि अंधकार ही नहीं सघन अंधकार है। आपने सुना भी होगा कि दुःख के चरम क्षण में सुख की रौशनी दिखाई पड़ती है। घोर विषाद में आनंद के भाव छिपे रहते हैं। घने अंधकार में भी सृजन की प्रक्रिया जारी रहती है।

और मुझे लगता है ————————— अंधकार! अंधकार ! अंधकार !

इन पंक्तियों में कवि कहता है कि नींदहीन ध्वनियों में अर्थात् अनवरत चलने वाली क्रियाओं –ईंटों पर ईंटें रखना, फलों का पकना, खबरों का छापना और रेशम बुनना –– में सृजनात्मकता अथवा निर्माण की प्रक्रिया जारी है। ये सारी चीजें घने अंधेरे के बीच ही घटित हो रही हैं। कवि इन्हें सुन रहा है। महज चुप्पी लगाए बैठा हुआ नहीं है। फलों का पकना रचनात्मक फल का भी पकना है। स्मरण करें सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की पंक्ति ''दिए हैं जगत को मैंने फूल–फल /किए हैं अपनी प्रभा से'' अर्थात् कवि ने अपनी रचनात्मकता और सृजनात्मकता को जगत को समर्पित किया है। पकना यानी भावों का परिपक्व होना भी है। नींद में व्यक्ति अकर्मण्य सा होता है। कोई क्रिया नहीं होती है। यहाँ तो नींदहीन क्रिया है। सतत गतिशील क्रिया है जिसके लिए कवि ने अति सुंदर ढंग से कहा है 'नींदहीन ध्वनियाँ'। कवि को लगता है कि इन नींदहीन ध्वनियों के लुप्त इतिहास के अनगिनत /ध्रुवांतों पर कवि पहुँच जाता है। अर्थात् अंधेरे समय में खोए हुए इतिहास के असंख्य /ध्रुवांत पर पहुँचना और मानव जीवन के लिए उपयोगी तत्वों का संधान करते हुए कवि सतत रचनारत है। कोरे कागज की भट्ठी पर लगातार मैं संघर्षरत हूँ। 'भट्ठी' में तपने और गलने के भाव को याद करें। बिना तपे और गले नयी वस्तु को आकार नहीं मिलता है। ठीक उसी प्रकार ह्रदय के निरभ्र कोने में भावों का आंदोलन, उद्वेलन और उच्छ्लन से ही कविता का जन्म संभव होता है। कवि ने जीवन और संघर्ष से अपने बिंबों को अंकित किया है। श्रम, प्रकृति, जीवन को महत्व दिया है। अतः यहाँ उसकी जीवन दृष्टि को भी भली–भाँति समझा जा सकता है।

कविता का कद या उसका उजाला हमेशा कवि से भी बड़ा हो तो वह कालजयी बनती है। कवि तो रचना प्रस्तुत करके रेशम के कीड़े की तरह शहतूत में अपने को समर्पित कर देता है। जब कभी भी कोई कवि आत्ममुग्धता में जीने लगता है और अपने को महान मान बैठता है तो उसकी रचना न महत्वपूर्ण बन पाती है और न ही कालातीत हो पाती है। उन्नीस सौ साठ में रची गयी इस कविता में हम केदार जी की काव्ययात्रा के अगले चरण के संकेत पाते हैं। जैसे, पहला संग्रह 'अभी बिल्कुल अभी' के बाद 'जमीन पक रही है' और उसके बाद कवि का 'यहाँ से देखो'। काव्य भूमि का पकना और उस भूमि पर फलीभूत को दिखाना बहुत कुछ संकेत करता है। इस विषय पर आप स्वयं विचार कर सकते हैं।

19.2.5 'कुछ फर्क़ नहीं पड़ता' कविता का वाचन और विश्लेषण

हर बार लौटकर
जब अंदर प्रवेश करता हूँ
मेरा घर चौंक्कर कहता है 'बधाई'

ईश्वर
यह कैसा चमत्कार है
मैं कहीं भी जाऊँ
फिर लौट आता हूँ
सड़कों पर परिचय–पात्र माँगा नहीं जाता
न शीशे में सबूत की जरूरत होती है
और कितनी सुविधा है कि हम घर में हों
या ट्रेन में
हर जिज्ञासा एक रेलवे टाइमटेबुल से
शांत हो जाती है

आसपास मुझे हर मोड़ पर
थोड़ा सा लपेटकर बाक़ी छोड़ देता है
अगला कदम उठाने
या बैठ जाने के लिए

और यही जगह है, जहां पहुँचकर

पत्थरों की चीख साफ सुनी जा सकती है।
पर सच तो यह है कि यहाँ
या कहीं भी फर्क़ नहीं पड़ता

तुमने जहां लिखा है 'प्यार'
वहीं लिख दो 'सड़क'
फर्क़ नहीं पड़ता

मेरे युग का महाविरा है
फर्क़ नहीं पड़ता

अक्सर महसूस होता है
कि बगल में बैठे हुए दोस्तों के चेहरे
और अफ्रीका की धुंधली नदियों के छारे
एक हो गए हैं

और भाषा जो बोलना चाहता हूँ
मेरी जिह्वा पर नहीं
बल्कि दांतों के बीच की जगहों में
सटी हुई है

मैं बहस शुरू तो करूँ
पर चीजें एक ऐसे दौर से गुजर रही हैं
कि सामने की मेज को
सीधे मेज कहना
उसे वहाँ से उठाकर
अज्ञात अपराधियों के बीच में रख देना है

और यह समय है

जब रक्त की शिराएँ शरीर से कटकर

अलग हो जाती हैं

और यह समय है

जब मेरे जूते के अंदर की एक नन्ही सी कील

तारों को गड़ने लगती है।

व्याख्या :

हर बार लौटकर ————————— या बैठ जाने के लिए।

केदारनाथ सिंह की कविता 'कुछ फर्क नहीं पड़ता' वास्तव में जीवन की कटु वास्तविकताओं का चित्रण करती है। 'फर्क नहीं पड़ता' कवि के अनुसार वर्तमान युग का मुहावरा ही बन गया है। यह कविता आधुनिक कहलाए जाने वाले मनुष्य के भावहीन, संवेदनविहीन होने की पीड़ा, व्यथा और बेचौनी को अंकित करती है। आज का मनुष्य अपने घर में, अपनों के बीच भी एक अजीब क़िस्म की अजनबीयत की भावना का शिकार होता जा रहा है। इस स्थिति से वह निरंतर जूझता दिखाई पड़ रहा है।

आज हमारे आत्मीय संबंध बुरी तरह प्रभावित हो रहे हैं। संबंधों की ऊष्मा घटती जा रही है। हमारी रागात्मकता निरंतर छीजने लगी है। घर, जो कभी स्नेह, प्रेम, अपनापा आदि का प्रतीक था तथा सुरक्षा के अहसास की शरण स्थली के रूप में समझा जाता था आज वहाँ लौटकर भी किसी तरह आत्मीयता और शांति नहीं मिल पाती है। कहने को घर में एकाधिक सदस्य होते हैं लेकिन सभी उपभोक्तावादी सभ्यता की चपेट में आकर यंत्रवत जीवनयापन करने के लिए अभिशप्त हैं। कवि ने इस भाव को स्पष्ट करने के लिए कहा है कि आज अपना घर उसे किसी अपरिचित आगंतुक की तरह बधाई देता है। भूमंडलीकरण के दौर की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि मनुष्य व्यक्ति में तब्दील हो गया है। वह अपनी प्रकृति और संस्कृति से ही दूरी बना ली है। वह न केवल अपनों से बल्कि स्वयं से कटता जा रहा है। यह स्थिति किसी भी संवेदनशील मनुष्य के लिए अत्यंत कष्टप्रद है। चाहे वह घर हो या ट्रेन में, अपने जीवन को एक निश्चित ढर्रे में ही सिमट कर रख दिया है। एक मशीन की भाँति उसने अपनी जीवन शैली बना ली है। इस युग में भावना कमजोरी का लक्षण माना जा रहा है। व्यावहारिक ज्ञान से रहित समझा जा रहा है। व्यक्ति भावशून्य और यंत्र सदृश बनता जा रहा है। समाज के साथ उसके दिनोदिन टूटते रिश्ते के परिणाम स्वरूप चाहे वह सड़कों पर हो या महफिलों में बस अकेला पड़ गया है। राह चलते हर व्यक्ति के लिए एक–दूसरे का चेहरा अनजाना और बेपहचाना प्रतीत होता है। व्यक्ति इस कदर ग्लोबल हो गया है कि व्यापक सरोकार और चिंताओं के लिए उसके पास कोई स्पेस तक नहीं बचा है।

और यही जगह है ————————— तारों को गाड़ने लगती है।

कवि का आग्रह है कि जहां तक संभव हो मनुष्य को यथार्थ से मुँह मोड़ना नहीं है बल्कि उससे जुड़ना चाहिए। यथार्थबोध से जुड़ना तथा इससे संबधित परिस्थितियों को मन से अपनाना अच्छी काव्य रचना के लिए आवश्यक मानते हैं। 'कुछ फर्क नहीं पड़ता' कविता आधुनिक मानव के इसी यथार्थ को प्रस्तुत करती है। कवि को यह लगता है कि वह ऐसी जगह पहुँच गया है जहाँ कोई अपना नहीं है। उसे ऐसा अहसास होता है कि आज का मनुष्य पाषाण से भी अधिक क्रूर, कठोर और निर्दय हो गया है।

कवि ने इस कविता के माध्यम से आज के निर्मम जीवन पर व्यंग्य किया है। उसने कहा है कि आज का मनुष्य सभी तरह के जीवन मूल्यों के प्रति उदासीन है। आज 'सड़क' और 'प्यार' दोनों

एक से हैं अर्थात 'प्यार' भी सड़क की तरह सपाट और भावशून्य हो चुके हैं। भावावेग का कोई स्थान नहीं रह गया है। जिस दौर में इंसान और इंसानी रिश्ते प्रोडक्ट में तब्दील हो जाएँ वहाँ स्वाभाविक है कि मानवीय नाते–रिश्तों का बिखरना, टूटना स्वाभाविक है। संवेदनशील जीवन, भाव रहित भाषा और व्यवहार आज के दौर की पहचान के रूप में स्वीकार कर लिए गए हैं। 'फर्क़ नहीं पड़ता' हमारे युग का नारा बन चुका है। यह सर्वाधिक चिंता का विषय है।

केदारनाथ सिंह ने हमारे समकाल में प्रसरित अजनबीपन का मार्मिक चित्रण करते हुए लिखा है कि जिन्हें हम नहीं जानते या पहचानते हैं उनके प्रति हमारा जैसा भाव रहता है ठीक वही भाव पास बैठे मित्र के प्रति भी प्रकट हो रहा है। एक अजनबीपन की स्थिति बनी हुई है। यह अपने समय की सबसे बड़ी विडंबना है। अपनी बोली–बानी में हम अपने को अभिव्यक्त करने में लज्जित महसूस कर रहे हैं। कवि कहता है कि वर्तमान समय में मनुष्य की जीवन शैली बनावटी और दिखावटी हो गई है। व्यक्ति के मन के भीतर जो बात होती है वह उसे व्यक्त नहीं करता। मुंह से बाहर जो बात निकलती है वह बनावटी और झूठी होती है। अपनत्व खो गया है। एक भयानक दौर से गुजर रहे हैं हम। तमाम विसंगतियों और विडंबनाओं के बीच मनुष्य घुटता–पीसता, कराहता हुआ जीवन निर्वाह कर रहा है। कवि ने इस विकट समय की विकरालता को स्पष्ट करते हुए जो बिंब योजना प्रस्तुत की है वह निश्चित तौर पर अभिनव है – 'जब रक्त की शिराएँ शरीर से कटकर/ अलग हो जाती हैं।' रक्त विहीन शरीर का कोई महत्व नहीं होता है। संवेदनहीन जीवन की कोई अहमियत नहीं रह जाती। अपनी जड़ से जुड़कर ही मनुष्य अपने आपको बचाए रख सकता है। मौजूदा स्थिति 'जूते के अंदर की एक नन्ही–सी कील' के समान गड़ने लगती है। उम्मीद करनी चाहिए कि मनुष्य उस नन्ही सी कील को निकाल कर फेंक देगा। इससे मनुष्य और मनुष्यता की विजय होगी।

बोध प्रश्न–1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

1. केदारनाथ सिंह की कविताओं में बिंब योजना को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
   .....
   .....
   .....
2. केदारनाथ सिंह के रचना संसार में अभिव्यक्त बदलते समय पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
   .....
   .....
   .....
3. पठित कविताओं के आधार पर केदारनाथ सिंह के काव्य सौंदर्य का उद्‌घाटन कीजिए।
   .....
   .....
   .....
4. समकालीन कविता के विकास में केदारनाथ सिंह के योगदान पर विचार कीजिए।
   .....
   .....
   .....